५. मन ही माटी, मन ही सोना

एक युवक एकान्त शांत स्थान पर बैठकर एक देवी की उपासना कर रहा था। चिरकाल तक उपासना करने के बाद देवी ने स्वयं प्रकट होकर कहा कि तुमने मुझे क्यों स्मरण किया है ? बोलो, तुम्हें क्या चाहिए ?

युवक ने देवी को नमस्कार कर कहा—माँ ! मेरे अन्तर्मानस में एक इच्छा है कि सम्पूर्ण संसार मेरे वश में हो जाए। मैं जिस प्रकार चाहूँ, उस प्रकार वे कार्य करें।

देवी ने कहा—वरदान देने के पूर्व मेरे कुछ प्रश्न हैं ? क्या तुम उन प्रश्नों का उत्तर दोगे ?

हाँ, क्यों नहीं दूँगा ? जो भी इच्छा हो, सहर्ष आप पूछ सकती हो।

देवी ने पूछा—तुम जहाँ रहते हो। तुम्हारे आसपास में अनेक पड़ौसियों के मकान हैं। वे अड़ौसी-पड़ौसी तुम्हारे अधीन हैं न ?

उत्तर—माँ ! अड़ौसी-पड़ौसी पर मेरा क्या अधिकार है, जो मेरे वश में रहें। वे तो सर्वतन्त्र स्वतन्त्र हैं। सभी पड़ौसी अपनी मनमानी करते हैं।

देवी ने कहा—वत्स ! अड़ौसी-पड़ौसी पर तुम्हारा अधिकार नहीं तो यह बताओ कि तुम्हारे परिवार के जितने भी सदस्य हैं वे तो तुम्हारे संकेत पर नाचते होंगे न ?

युवक ने निःश्वास छोड़ते हुए कहा—माँ ! आज तो कलियुग है। परिवार के सारे सदस्य अपनी मनमानी करते हैं, न बड़ों का मान है और न छोटों पर प्यार है। मेरी शिक्षा भरी बात को भी वे इस तरह से उड़ाते हैं जैसे पतंग आकाश में उड़ाई जाती है।

देवी ने पूछा—वत्स ! यह बताओ तुम्हारे घर में अनुचर होंगे, वे तो तुम्हारी बात को बहुत ही श्रद्धा से सुनते होंगे ? तुम्हारे संकेत पर अपने प्यारे प्राण न्यौच्छावर करने को प्रस्तुत रहते होंगे ?

युवक ने एक दीर्घ निःश्वास लेते हुए कहा—आज के युग में नौकर मालिक बनकर रहते हैं। मालिक को नौकर की हर बात को मानना पड़ता है। यदि मालिक उनके मन के प्रतिकूल करता है तो वे हड़ताल पर उतारु हो जाते हैं। मालिक को सदा यह चिन्ता रहती है कि कहीं नौकर नाराज न हो जाए और इसलिए मालिक सदा नौकर की खुशामद करता है कि वे कहीं नाराज होकर न चले जाएँ इसलिए सदा उनकी बातों पर ध्यान देना होता है।

देवी ने अगला प्रश्न किया—अच्छा यह बताओ, तुम्हारे पुत्र और पुत्रियां तो तुम्हारे अनुशासन में हैं ना ? वे तो तुम्हारी आज्ञा की अवहेलना नहीं करते होंगे ?

युवक ने कहा—माँ ! आधुनिक शिक्षा प्राप्त बालक और बालिकाओं के सम्बन्ध में क्या पूछ रही हो ? वे राम नहीं है और न कृष्ण और महावीर ही हैं जो प्रातःकाल उठकर माता-पिता को नमस्कार करते थे। उनकी आज्ञा का पालन करते थे। पर यह तो कलियुग है, इसमें माता-पिता की आज्ञा का पालन करना तो कठिन रहा, यदि अच्छे भाग्य हों तो वे माता-पिता का उपहास नहीं करेंगे। आज तो माता-पिताओं को पुत्रों की आज्ञाओं का पालन करना होता है।

देवी ने कहा—वत्स ! यह बताओ तुम्हारी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पत्नी तो पूर्ण आज्ञाकारिणी है न ? वह तो सीता की तरह तुम्हारी बात को मानती है न ?

युवक ने कहा—आधुनिक पत्नियाँ घर की मालकिन होती हैं। उनके संकेत पर ही पति को कार्य करना होता है। यदि पति पत्नी की आज्ञा का पालन न करे तो उसे रोटी मिलना भी कठिन हो जाता है।

देवी ने कहा—अब मेरे अन्तिम प्रश्न का भी उत्तर दे दो। वह प्रश्न है कि तुम्हारा मन तो तुम्हारे अधीन है न ? तुम मन के मालिक हो या गुलाम हो ?

युवक ने कहा—माँ ! मन तो बड़ा चंचल है। प्रतिपल प्रतिक्षण नित्य नई कल्पनाएँ संजोता रहता है। मैं जितना मन को वश में करने का प्रयत्न करता रहता हूँ, उतना ही वह अधिक भागता है। बहुत प्रयास किया पर मन मानता नहीं।

देवी ने कहा—वत्स ! जब तुम्हारा मन ही तुम्हारे अधीन नहीं है तुम उसके स्वामी नहीं हो तो संसार पर तुम्हारा नियन्त्रण कैसे होगा ? जिसने मन को नहीं जीता, वह संसार को जीत नहीं सकता। इसलिए गीर्वाण गिरा के एक यशस्वी अनुभवी चिन्तक ने कहा है—'मनोविजेता जगतोविजेता।' जिसने मन को जीत लिया, वह संसार को भी जीत सकता है और जिसने मन को नहीं जीता, वह संसार को कभी जीत नहीं सकता।

देवी की बात इतनी मार्मिक थी कि युवक के पास उसका उत्तर नहीं था। मन बड़ा ही चंचल है बड़े-बड़े साधक भी मन को वश में नहीं कर सके, वे भी मन के प्रवाह में बह गये।

हमारे श्रद्धेय पूज्य गुरुदेव उपाध्याय श्रीपुष्कर मुनिजी महाराज ने एक बार कहा कि मन को जीतना चालीस सेर से भी अधिक कठिन है। राजस्थानी में 'मन' और 'मण' ये दो शब्द हैं। मण जो एक नाप विशेष है, प्राचीन युग में वह चालीस सेर का एक होता था और एक सेर के चार पाव होते थे। सेर का दूसरा अर्थ सिंह भी है। उस शेर के भी चार पांव होते हैं। चालीस शेरों को जीतना जितना कठिन है उससे भी अधिक कठिन है मन को जीतना।

कुरुक्षेत्र के मैदान में वीर अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा—यह मन बड़ा ही चंचल है। वायु की तरह इस पर नियन्त्रण करना कठिन है। ऐसा कौन-सा उपाय है जिससे कि मन अपने अधीन में हो जाय—

चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥

श्रीकृष्ण ने चिन्तन के सागर में डुबकी लगाई और उन्होंने कहा—मन को वश में करने के दो ही उपाय हैं अभ्यास और वैराग्य। निरन्तर अभ्यास करने से मन एकाग्र होता है और संसार के पदार्थों के प्रति मन में वैराग्यभावना उद्‌भूत होती है तो मन चंचल नहीं होता।

अध्यात्मयोगी आनन्दघनजी एक फक्कड़ सन्त थे। आध्यात्मिक साधना में सदा तल्लीन रहने वाले थे। उन्होंने चौबीस तीर्थंकरों पर सारगर्भित और दार्शनिक भावना से संपृक्त चौबीसी का निर्माण किया। बड़ी अद्‌भुत है वह चौबीसी। जब भी साधक उन पद्यों को गाता है तो श्रोतागण श्रद्धा से झूम उठते हैं। उन्होंने कुन्थुनाथ की प्रार्थना में एक बहुत ही महत्वपूर्ण बात कही कि 'मन' शब्द संस्कृत में नपुंसकलिंग है। नपुंसक व्यक्ति में शक्ति नहीं होती। वह कभी भी रणक्षेत्र में जूझ नहीं सकता। पर मन एक ऐसा नपुंसक है जो बड़े बड़े वीर शक्तिशाली मर्दों को भी पराजित कर देता है। रावण कितना शक्तिशाली था, जिसने देवी शक्तियों को भी अपने अधीन कर रखा था। देवी शक्तियाँ भी उसके सामने काँपती थीं, वह महाबली रावण भी मन का गुलाम था। मन को वह भी न जीत सका। मन के अधीन होकर ही वह सीता को चुराने के लिए चल पड़ा। सीता के सामने हाथ जोड़कर दास की तरह खड़ा रहता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

था। सीता उसे फटकारती, कुत्ते की तरह धुत्कारती, तथापि वह गुलाम कुत्ते की तरह दुम हिलाता रहता था। यह नपुंसक मन की शक्ति थी जिसने रावण को भी पराजित कर दिया था इसलिए कवि ने कहा—

मैं जाण्यू ए लिंग नपुंसक सकल मरद ने ठेले
बीजी बातें समरथ छे नर एहने कोइ न झेले
हो कुन्थुजिन मनडूं किम ही न बाझे—

राजस्थान की एक लोक कथा है कि एक सेठ ने भूत को अपने अधीन किया! भूत ने कहा कि मैं तुम्हारा जो भी कार्य होगा कर दूँगा पर शर्त यह है कि मुझे सतत् काम बताना होगा जिस दिन तुमने काम नहीं बताया उस दिन मैं तुम्हें निगल जाऊँगा।

सेठ बड़ा चतुर था। उसने सोचा कि मेरे पास इतना काम है कि यह भूत करते-करते परेशान हो जायेगा। हजारों बीघा मेरी जमीन है धान्य के ढेर लग जाते हैं तथा अन्य भी कार्य हैं। सेठ ने भूत की शर्त स्वीकार कर ली और कहा जाओ जो मेरी खेती है सबको काट डालो। अनाज का ढेर एक स्थान पर करो और भूसा एक स्थान पर करो। अनाज की बोरियाँ घर में भर दो, कोठार में भर दो। आदेश सुनकर भूत चल पड़ा और कुछ ही क्षणों में कार्य सम्पन्न कर लौट आया। उसने दूसरा कार्य बताया, वह भी उसने कर दिया। उसने पुनः आकर कहा—बताओ कार्य, नहीं तो मैं तुम्हें खा जाऊँगा। प्रकृष्ट प्रतिभा सम्पन्न श्रेष्ठी ने भूत से कहा—चौगान में एक खम्भा गाड़ दो और मैं जब तक नया काम न बताऊँ तब तक तुम उस पर चढ़ते और उतरते रहो।

भूत श्रेष्ठी की बात सुनकर सोचने लगा कि यह बड़ा चालाक और बुद्धिमान है। मेरे चंगुल में कभी भी फँस नहीं सकता। वह श्रेष्ठी के चरणों में गिर पड़ा। भारत के उन तत्वदर्शी मनीषियों ने इस लोक कथा के माध्यम से इस सत्य को उजागर किया है कि मन भी भूत के सदृश है। खाली मन शैतान का घर होता है। मन को कभी भी खाली न रखो। मन बालक के सदृश है। बालक के हाथ में यदि शस्त्र है तो वह स्वयं का भी नुकसान करेगा और दूसरे का भी। यदि बालक के हाथ से शस्त्र छीनकर ले लिया जायेगा तो वह रोयेगा चिल्लायेगा। समझदार व्यक्ति बालक के हाथ में चमचमाता हुआ खिलौना देता है और उसके पास से शस्त्र ले लेता है। वैसे ही मन रूपी बालक के हाथ में विषय-वासना, राग-द्वेष के शस्त्र हैं, विकथा का शस्त्र है तो उसके स्थान पर उसे स्वाध्याय, ध्यान, चिन्तन का यदि खिलौना पकड़ा दिया गया तो वह अशुभ से हटकर शुभ और शुद्ध में विचरण करेगा। जो मन मारक था वह तारक बन जायेगा।

जैन साहित्य में एक बहुत ही प्रसिद्ध कथा है। प्रसन्नचन्द्र नामक राजर्षि एकान्त शान्त स्थान में ध्यान मुद्रा में अवस्थित थे। उस समय सम्राट श्रेणिक सवारी सजाकर श्रमण भगवान महावीर को वन्दन करने के लिए जा रहा था। प्रसन्नचन्द्र राजर्षि को ध्यान मुद्रा को देखकर उसका हृदय श्रद्धा से अभिभूत हो गया। सम्राट नमस्कार कर समवशरण की ओर आगे बढ़ गया। कुछ राहगीर परस्पर वार्तालाप करने लगे कि प्रसन्नचन्द्र तो साधु बन गये हैं पर इनके नगर पर शत्रुओं ने आक्रमण कर दिया है और वे नगर को लूटने के लिए तत्पर है। ये शब्द ज्योंही राजर्षि के कर्ण-कुहरों में गिरे, उनका चिन्तन धर्म-ध्यान से हटकर आर्त्त और रौद्र ध्यान में चला गया और वे चिन्तन करने लगे कि मैं शत्रुओं को परास्त कर दूँगा। मेरे सामने शत्रु एक क्षण भी टिक नहीं सकेंगे। प्रसन्नचन्द्र राजर्षि ने मन में युद्ध की कल्पना प्रारम्भ की। शत्रु सेना दनादन मर रही है। स्वयं युद्ध के लिए सन्नद्ध हो चुके हैं। मन में संकल्प है सभी शत्रुओं को समाप्त करके ही मैं संसार को बता दूंगा कि मैं कितना वीर हूँ।

सम्राट श्रेणिक ने श्रमण भगवान महावीर को वन्दन कर पूछा भगवन्! मैं श्री चरणों में आ रहा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

था, मैंने मार्ग में प्रसन्नचन्द्र राजर्षि को ध्यानस्थ अवस्था में देखा। वे इस समय काल कर जाएँ तो कहाँ पर पधारेंगे ?

भगवान् ने जो सर्वज्ञ सर्वदर्शी थे, कहा—'श्रेणिक ! इस समय यदि प्रसन्नचन्द्र राजर्षि आयु पूर्ण करें तो सातवीं नरक में जायेंगे। श्रेणिक के आश्चर्य का पार न रहा। एक महासन्त जो ध्यान-स्थ है मेरु पर्वत की तरह अड़ोल है, वे सातवीं नरक में कैसे जाएँगे। कुछ क्षण रुककर पुनः जिज्ञासा प्रस्तुत की इस समय आयु पूर्ण करेंगे तो कहाँ जाएँगे। भगवान् ने कहा—छट्ठी नरक में। पुनः प्रश्न उठा। अब कहां जाएँगे ? भगवान ने पांचवीं, चौथी, तीसरी, दूसरी और पहली नरक की बात कही। उसके पश्चात् स्वर्ग में उत्तरोत्तर विकास की स्थिति बताई और सम्राट सोच ही रहे थे कि यह गजब की पहेली है। कहाँ सातवीं नरक और कहाँ सर्वार्थसिद्ध देवलोक कुछ ही क्षणों में पतन से उत्थान की ओर गमन ? इतने में सम्राट के कर्ण कुहरों में देव दुन्दुभि गडगडाने की आवाज आई। सम्राट ने पूछा कि देव दुन्दुभि की आवाज कहाँ से आ रही है भगवन् ! भगवान् ने स्पष्टीकरण किया कि प्रसन्नचन्द्र राजर्षि को केवलज्ञान और केवल दर्शन हो चुका है।

सम्राट श्रेणिक ने सहज जिज्ञासा प्रस्तुत की—मैं इस अबूझ पहेली को नहीं बुझा सका हूँ। यह रहस्यमयी बात मेरी समझ में नहीं आई है। भगवान ने समाधान की भाषा में कहा—प्रसन्नचन्द्र राजर्षि के अन्तर्मानस में जो द्वन्द युद्ध चल रहा था और वे युद्ध की पराकाष्ठा पर थे तब तुमने मेरे से पूछा कि भगवन् वे मरकर कहाँ जाएँगे इसीलिए मैंने सातवीं नरक की बात कही और जब युद्ध में उनका हाथ सिर पर गया और उन्हें स्मरण हो आया कि मैं तो साधु हूँ, साधु होकर मैं कहाँ भटक गया। पश्चात्ताप की आग में सुलगने लगे और कर्मों की निर्जरा करते हुए उन्होंने केवलज्ञान और केवल दर्शन को प्राप्त कर लिया है। इसीलिए भारत के महामनीषियों ने कहा है—'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयोः।' मन से ही कर्मों का बन्धन होता है और मन से ही कर्मों की मुक्ति भी होती है। मन विष भी है और अमृत भी है।

एक तिजोरी है। वह तिजोरी जिस चाबी से खोली जाती है उसी चाबी से वह तिजोरी बन्द भी होती है। केवल चाबी को घुमाने से ही तिजोरी बन्द भी होती है और खुलती भी है। वैसे ही मन की तिजोरी भी अशुभ विचारों से कर्म का बन्धन करती है और शुभ विचारों से कर्म को नष्ट भी करती है इसलिए हमें अशुभ विचारों से हटकर शुभ विचारों में रमण करना चाहिए। इसीलिए मैंने प्रवचन के प्रारम्भ में रूपक की भाषा में उस सत्य को उजागर किया कि जब तक तुम अपने मन पर नियन्त्रण नहीं कर सकोगे, तब तक विश्व पर नियंत्रण नहीं कर सकते। मन हमारा मित्र भी है और दुश्मन भी है। मन से ही मोक्ष मिलता है। बिना मन वाले प्राणी को मोक्ष प्राप्त नहीं होता और न अणुव्रत और महाव्रत ही प्राप्त होते हैं अतः हम मन को साधें। मन को अपने नियन्त्रण में रखें तभी आनन्द का महासागर ठाठें मारने लगेगा। □

(शेष पृष्ठ ४८८ का)
सातवीं नरक में ले जाने वाला इन्द्रियों का असंयम था। अरणक मुनि जब इन्द्रियों के प्रवाह में बहे तो साधना से भटक गये और जब इन्द्रियों पर उन्होंने नियन्त्रण किया तो मोक्ष में पहुँच गये। हम भी इन्द्रिय संयम कर अपने जीवन को महान बना सकते हैं। इन्द्रियों के प्रवाह में न बहें इसीलिए मैंने प्रारम्भ में आपको इन्द्रिय प्रवाह में प्रवाहित होने वाले राजा की कहानी बताई। आप सम्यक् प्रकार से समझ गए होंगे कि इन्द्रिय संयम की कितनी आवश्यकता है। आज भौतिकवाद के युग में इन्द्रिय असंयम के अनेक साधन उपलब्ध हैं। हम उनके प्रवाह में न बहें तभी आत्मा से परमात्मा और नर से नारायण बन सकेंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org